आह्वान कैम्पस टाइम्स

पाक्षिक बुलेटिन | प्रवेशांक | 7-21 अगस्त 1991, गोरखपुर | एक रूपया छह पृष्ठ

एक नये सामाजिक परिवर्तन की दिशा में

इस नई पहल के हाथ मजबूत करो

□ सम्पादक मण्डल □

आह्वान कैम्पस टाइम्स का प्रकाशन क्यों ? क्या यह प्रिण्ट मीडिया की अनेकानेक छोटी-बड़ी दुकानों की भीड़ में एक नया इजाफा भर है ? या फिर यह 'कुछ नए' का शगल पालने वाली खाली दिमागों से उपजी कोई नई चीज मात्र ही है । नहीं । ऐसा नहीं है। **आह्वान** कैम्पस टाइम्स आज के अन्धेरे राज से जूझने और इस राज की काली छाया में पड़े समाज को बाहर निकालने की कोशिशों का एक हिस्सा है। जड़ हो चुके देश के मौजूदा सामाजिक-आर्थिक ढांचे के ध्वंस और उसकी जगह एक नूतन सामाजिक-आर्थिक प्रणाली की रचना के लिए संघर्षरत विविध मोर्चों में से **आह्वान** कैम्पस टाइम्स एक नया मोर्चा है।

हां, देश के समाज और राज का मौजूदा ढांचा जड़ हो चुका है। दुर्निवार संकटों के भंवरजाल में फंसी देश की अर्थव्यवस्था, राजनीतिक अस्थिरता की निरन्तरता और बार-बार पैदा होता संवैधानिक संकट, असमाधेयता की सीमा तक पहुंच चुके सीमान्त प्रान्तों की राष्ट्रीयताओं की समस्याएं, पहले से ही मौजूद अन्य क्षेत्रीय समस्याओं का उग्रतर होते जाना, एवं नए-नए झगड़ों-विवादों का पैदा होते जाना, साम्प्रदायिक एवं जातिगत विद्वेष की सुलगती आग, राजनीतिक-प्रशासनिक-वैधिक संस्थाओं की चरमपतनशीलता—यह सब मौजूदा ढांचे की जड़ता के ही जीवित संकेतक हैं । निरन्तर बढ़ती जा रही बेरोजगारी, नई-नई ऊंचाइयों को छूती महंगाई, सामाजिक अराजकता का माहौल समाज में विभिन्न यथास्थितिवादी, अतीतोन्मुखी और कठमुल्लावादी मूल्यों-मान्यताओं और बीमार हिंस्र प्रवृत्तियों-कुण्ठाओं का पनपना और विस्तार करते जाना, सर्वत्र नैराश्य, अनास्था और अलगाव का आलम—ये सारे लक्षण भी समाज के विद्यमान ढांचे के गतिरोध के ही सूचक हैं।

जीवन की इन असह्य दशाओं और राज्यसत्ता की निरंकुशता के लौह शिकंजों में फंसा देश का आम आदमी अपनी मुक्ति के लिए बेचैन है, लेकिन देश में परिवर्तनकारी क्रान्तिकारी शक्तियों के बिखराव और क्रान्तिकारी आन्दोलन के गतिरोध की स्थिति से उत्पन्न विकल्पहीनता में वह अभिशप्त जीवन जीने को विवश है।

हमारा देश ही नहीं वरन् सारी दुनिया ही आज अन्धेरे के इसी दौर से होकर गुजर रही है। दुनिया के पैमाने पर यह विपर्यय का दौर है। क्रान्तियों की पराजय का दौर है। और इसके परिणाम स्वरूप पूरी दुनिया में ही पुनरुत्थानवाद और यथास्थितिवाद की घुटनभरी हवा बह रही है। अन्धेरे के स्वामी आज मदमत्त होकर इतिहास के रथचक्र को पीछे घुमाने की कोशिश कर रहे हैं।

लेकिन, यह तो हालात की सच्चाई का एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि ठीक इसी समय दुनिया के सत्ताधारी भी संकटों के दुष्चक्र में फंसे हुए हैं। दुनिया पर राज करने के लिए उनके द्वारा बनाई गई रचना उनके रचना-विधान की ही अवज्ञा करने लग गई है। विश्व पूंजीवादी तंत्र आज संकट के जिस भंवर में खड़ा है, उससे बाहर निकलने के लिए अपने सिद्धान्तकारों की मदद से वह जो नई-नई युक्तियां गढ़ रहा है वे उसे बाहर निकालने के बजाए और भी गहरे धंसाती जाएंगी और इससे बदहवास होकर सत्ताधारियों की सनक बढ़ती जाएगी। इसका नतीजा यह होगा कि दुनिया की जनता इस अमानवीय तंत्र के जुए को उतार फेंकने के लिए और भी बेचैन होती जाएगी।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

बजट और औद्योगिक नीति

अब महंगाई की मार सीधे दाल रोटी पर

विगत 24 जुलाई को नई सरकार के वित्त मंत्री डा० मनमोहन सिंह ने संसद में सत्र 1991-92 का बजट प्रस्तुत किया । कमोबेश हर बार की तरह ही इस बार भी सरकार द्वारा इसे "अमीरों पर चोट करने वाला और गरीबों के साथ रियायत बरतने वाला बजट" बताया गया और बजट घाटे को पूरा करने के लिए इस बार पुनः प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष करों का नया बोझ आम जनता के सिर पर लाद दिया गया। परन्तु इस बार के बजट सत्र की सबसे खास बात यह रही कि बजट के बाद वित्त मंत्री ने देश को वर्तमान गम्भीर संकटों से उबारने के लिए नई औद्योगिक नीति का जो खाका पेश किया और उससे देश के भविष्य की जो तस्वीर उभरी वह सालभर के इस बजट पर भारी पड़ गई।

नई सरकार के सत्तासीन होते ही उसके काबिल वित्त मंत्री ने देश के बिगड़े हुए भुगतान सन्तुलन से निपटने के लिए अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष से ऋण की आशा में उसकी शर्तों के मुताबिक रूपये का जो एकमुश्त अवमूल्यन किया उसके चलते पहले से ही दहाई के अंकों तक पहुंची हुई मुद्रास्फीति पर दबाव बहुत बढ़ गया था । उसके तुरन्त बाद रेल बजट में रेल भाड़ों में वृद्धि कर दी गई। आम बजट के पूर्व इन दोनों कदमों

(शेष पृष्ठ 6 पर)

नरेन्द्रदेव वि.वि.में फायरिंग

फैजाबाद (आ.प्र.)। नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय प्रशासन की बढ़ती तानाशाही और निरंकुशता आज गुण्डागर्दी की शक्ल अख्तियार करती जा रही है। विगत एक अगस्त को विश्वविद्यालय प्रशासन की शह पर पुलिस की मौजूदगी में हड़ताली कर्मचारियों पर कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा गोलाबारी की घटना इसी बात की तरफ संकेत कर रही है।

विश्वविद्यालय कर्मचारी विगत22जुलाई से अपनी निहायत वाजिब मांगों को लेकर आन्दोलन कर रहे हैं । लेकिन प्रशासन इस आन्दोलन को दबाने के लिए एक अगस्त की घटना जैसी घटिया हरकतों पर उतर आया है।

कर्मचारियों पर फायरिंग की इस घटना के बाद से पूरे विश्वविद्यालय का माहौल तनावग्रस्त है और वि.वि. परिवार प्रशासन के खिलाफ आक्रोश से उबल रहा है। इस घटना के बाद कर्मचारियों के आन्दोलन ने अब एक नया मोड़ ले लिया है तथा विश्वविद्यालय के समस्त कर्मचारी और अध्यापक भी अब इस हड़ताल में शामिल हो गये हैं।

बीमार अर्थव्यवस्था :

सरकार के नुस्खे कितने कारगर होंगे ?

नरसिम्हा राव की सरकार देश की अर्थव्यवस्था को संकटों के दुश्चक्र से बाहर निकालने की रणनीति और रास्ता तैयार कर चुकी है। भुगतान संकट के सन्तुलन से निपटने के लिए सोने को विदेशी बैंकों में गिरवी रखने और दुनिया की कुछ बड़ी मुद्राओं के मुकाबले रुपये के मूल्यह्रास जैसे आपातकालीन कदम पहले ही उठाये जा चुके थे। नयी व्यापार नीति के बाद अब नयी उद्योग नीति की घोषणा भी हो चुकी है और 1991-92 का केन्द्रीय आम बजट भी संसद के पटल पर रखा जा चुका है। रेल बजट पहले ही घोषित किया जा चुका था।

नयी अल्पमत कांग्रेसी सरकार के मंत्रीगण इन नयी नीतियों और कदमों के नतीजों के बारे में कुछ इस अन्दाज में ऐलानबाजी कर रहे हैं, गोया उन्होंने कुछ ऐसे अचूक नुस्खे ईजाद कर लिए हैं कि बस उनके अमल की देर है और अर्थव्यवस्था की बीमारी छूमन्तर। देश के अधिकांश जाने-माने 'विद्वान' अर्थशास्त्री और पत्रकारिता जगत के जाने-माने सम्मानित 'बड़े लोग' भी कुछ छोटे-मोटे अगर-मगर के अलावा इन नीतियों और कदमों का विह्वल भाव से स्वागत कर रहे हैं; और कुल मिलाकर कुछ ऐसा समां बांधने की कोशिश की जा रही है गोया देश में एक 'नया सवेरा' आने वाला है।

दरअसल, बात सिर्फ इतनी ही नहीं है कि देश की अर्थव्यवस्था बीमार है और उसके माकूल इलाज की दरकार है, जैसा कि बताया जा रहा है। बीमारी के कीटाणु आर्थिक क्षेत्र की सीमाओं से बाहर निकलकर राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में काफी भीतर तक घुस-पैठ कर चुके हैं। इसके शुरुआती लक्षण तो काफी पहले ही, 60 के दशक की शुरुआत में ही, प्रकट हो चुके थे। तब से लेकर यह बीमारी लगातार बढ़ती ही रही है और इसके फैलाव की अलग-अलग मंजिलों में नये-नये लक्षण प्रकट होते रहे हैं और सन्'80 के दशक के प्रारम्भ से बीमारी ने जिस नई मंजिल में प्रवेश किया है, वह बीमारी की अन्तिम मंजिल है।

□ अरविन्द सिंह

वास्तव में, बीमारी के बीज तो उस ढांचे के भीतर ही निहित थे, जिसे नेहरू ने अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद 'समाजवादी ढांचे' की पट्टिका लगाकर खड़ा किया था । सार्वजनिक क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र और निजी क्षेत्र की मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला यह 'समाजवादी ढांचा' केवल नेहरू को ही नहीं जंचा था बल्कि तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों के नये-नये सत्तारूढ़ हुए पूंजीपति वर्ग ने अपने-अपने देशों मे इस साइन बोर्ड को लटकाना काफी चतुराई भरा काम समझा था, और यदि उनकी बिरादरी के हितों का चश्मा लगाकर देखा जाए तो यह

(शेष पृष्ठ 2 पर)

दिशा छात्र समुदाय की शुभकामनाएं

आह्वान कैम्पस टाइम्स के प्रकाशन का हम पूरी गर्मजोशी के साथ स्वागत करते हैं। हमारा विश्वास है कि आह्वान कैम्पस टाइम्स व्यापक छात्र आबादी की समस्याओं के खिलाफ संघर्षों में छात्रों के साथ-कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेगा तथा देश के छात्र आन्दोलन को नयी गति देने के प्रयासों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को निभा सकेगा। दिशा छात्र समुदाय छात्र आन्दोलन में इस नई पहल के लिए शुभकामनाएं सम्प्रेषित करता है।

असमाधेय संकटों के दुष्चक्र में फंसी है देश की अर्थ व्यवस्था

(पृष्ठ 1 कालम 5 का शेष)

तत्कालीन परिस्थितियों में चतुराई भरा कदम था भी, क्योंकि यह उस समय की उनकी जरूरतों और सीमाओं के सर्वथा अनुरूप था। सद्यःप्राप्त राजनीतिक आजादी को किसी भी कीमत पर सुरक्षित रखने की जरूरत और पूंजीपति वर्ग की आर्थिक सीमाओं की जमीन पर खड़ा हुआ था तीसरी दुनिया का तथाकथित समाजवाद। कम मुनाफा देने वाले लेकिन बुनियादी और अवरचनागत (इन्फ्रास्ट्रक्चरल) उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रखकर अपेक्षाकृत अधिक मुनाफा बटोरने की गुंजाइश वाले उपभोक्ता सामग्रियों का उत्पादन करने वाले उद्योगों को निजी पूंजीपतियों के हवाले कर उनकी मदद करना तथा बाजार पर नियंत्रणों और प्रतिबंधों के जरिए राजनीतिक आजादी को बचाए रखते हुए आर्थिक आधार को विस्तारित करते जाना—यह तीसरी दुनियाके पूंजीवादी वर्ग की तत्कालीन रणनीति थी। अपनी इस रणनीति में वह शुरुआती दौर में काफी सफल रहा। उसकी इन शुरुआती कामयाबियों में तत्कालीन अनुकूल विश्व परिस्थितियों की भी अहम भूमिका थी। इसके साथ ही तीसरी दुनिया की उसकी अपनी बिरादरी की एकजुटता और पारस्परिक सहकार–सहयोग भी काफी मददगार रहा।

लेकिन, तीसरी दुनिया के इस 'समाजवाद' की शुरुआत कामयाबियों के आह्लाद गीतों की धुनें मन्द भी न हो पाई थीं कि मातमी धुनें उसके कानों में गूंजने लगीं। तीसरी दुनिया का यह 'समाजवादी' शिशु शैशवावस्था पारकर तरुणाई की दहलीज पर ठीक से कदम भी न रखने पाया था कि बीमारी के शुरुआती लक्षण प्रकट होने लगे। बाजार और पूंजीनिवेश के जिन नियंत्रणों और प्रतिबन्धों ने उसे अपने पैरों पर खड़े होने में सहारे का काम किया था, वे ही अब उसकी बेड़ियां बन गए। नियंत्रणों तथा प्रतिबन्धों को संचालित करने की जरूरतों से स्वाभाविक तौर पर उठ खड़े हुए भारी-भरकम नौकरशाही के तंत्र पर होने वाले खर्च और 'समाजवाद' तथा लोककल्याणकारी राज्य' के लबादों को ओढ़े रखने की गरज से दिए जाने वाले वित्तीय अनुदान (सब्सिडी) उसके लिए अतिरिक्त बोझ बन गए, जिसे पीठ पर लादे हुए आगे कदम बढ़ाना लगातार मुश्किल होता गया। इसका नतीजा यह हुआ कि '60 के दशक की शुरुआत में ही तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएं ठहराव का शिकार हो गयीं।

दरअसल, '60 के दशक में तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएं ही नहीं वरन पूरी दुनिया की पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएं ठहराव की शिकार थीं और वे इसके फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संकटों के थपेड़ों से कांपने लगी थीं।

भारत में '60 के दशक के आर्थिक संकट ने सन् '66 में पहली बार रुपये के भारी अवमूल्यन के लिए विवश किया। राजनीतिक क्षेत्र में इसकी परिणतियां छात्रों-नौजवानों-किसानों-मजदूरों के देश व्यापी जुझारू संघर्षों और नौ राज्यों में पहली बार कांग्रेसी सरकारों के पतन के रूप में उभरकर सामने आईं। नेहरू के समाजवाद का शोशा बिखर गया और मोहभंग के इस दौर में सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन भी भांति-भांति की विकृतियों एवं अराजक प्रवृत्तियों के गर्द-गुबार से भर उठा।

'60 के दशक से शुरू हुआ संकटों का यह सिलसिला न केवल निरन्तर जारी रहा है, बल्कि यह उत्तरोत्तर और भी अधिक घनीभूत और व्यापक होता गया है। '70 के दशक की विश्वव्यापी आर्थिक महामन्दी ने तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को बुरी तरह लड़खड़ा दिया और '80 का दशक आते-आते इन देशों की सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं की बुनियाद और उसका समूचा ऊपरी ताना-बाना ही एक ऐसे उलझाव के दुष्चक्र में फंस गया, जिसमें से बाहर निकल पाने के अब कोई आसार नजर नहीं आते। अब यह संकट संरचनागत (स्ट्रक्चरल) बन चुका था। मुद्रास्फीति और कीमतों में बेलगाम बढ़ोत्तरी, भुगतान सन्तुलन का संकट, बजट घाटा, वित्तीय घाटा और इससे निपटने की कोशिशों में कर्जों के जाल में फंसते जाना अब इसके स्थायी लक्षण बन चुके थे। तीसरी दुनिया के सत्ताधारी आज ढांचागत संकटों के इसी दुष्चक्र में फंसे हुए हैं और इससे बाहर निकलने के लिए अब तथाकथित संरचनागत परिवर्तनों की झाड़-फूंक करने में लगे हुए हैं।

'80 के दशक के प्रारम्भ से ही तीसरी दुनिया के 'समाजवाद' की इसी सामान्य नियति का शिकार भारत का 'समाजवाद' भी रहा है। भारत में '80 के दशक की शुरुआत इन्दिरा सरकार द्वारा अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष से बेहद अपमानजनक शर्तों की कीमत पर कर्जों की एक बड़ी खेप हासिल करने की मजबूरी से होती है। लेकिन अन्तरराष्ट्रीय साहूकार की यह बड़ी 'मदद' भी देशी सत्ताधारियों और उनकी अर्थव्यवस्था को संकटों के दुष्चक्र से बाहर नहीं खींच पायी। मुद्रास्फीति और कीमतों का बढ़ना जारी ही नहीं रहा बल्कि इसने पहले के सारे कीर्तिमानों को पीछे छोड़ दिया। बेरोजगारी तेज रफ्तार से बढ़ती रही। भुगतान सन्तुलन और बिगड़ता गया। विदेशी कर्जों का शिकंजा कसता गया। इसी के साथ, अर्थव्यवस्था के संकटों का एक नया दौर शुरू होता है, जब इसे टालने का कोई भी नया प्रयास संकटों के नए–नए रूपों और आयामों के प्रकट होने के नतीजे के रूप में सामने आने लगता है।

आर्थिक क्षेत्र के इस संकट ने राजनीतिक क्षेत्र में बार–बार उठ खड़े होने वाले राजनीतिक–संवैधानिक संकटों को जन्म दिया और देश का पूरा सामाजिक ताना–बाना ही तनावग्रस्त हो उठा। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी यह संकट समाज में विभिन्न यथास्थितिवादी, धार्मिक कठमुल्लावादी मूल्यों-प्रवृत्तितयों के जड़ जमाने, गहन निराशा, अराजकता, अलगाव और मानसिक ग्रन्थियों-बीमारियों के और उग्र हो उठने के रूप में सामने आता है। व्यवस्था के ऊपरी ढांचे में भी संकटों की यह निरन्तरता इस बात का संकेतक है कि संकट अब ढांचागत बन चुका है। अर्थव्यवस्था को दूरगामी तौर पर संकटों से उबारने की कशमकश आज नई व्यापार नीति, नई उद्योग नीति और 1991–92 के आम बजट के रूप में सामने आई है।

अर्थव्यवस्था के संकट को दूर करने के लिए लागू किए जा रहे 'नए' उपाय आन्तरिक विवशताओं की पैदाइश तो हैं ही, साथ ही इन्हें लागू करने के पीछे बाहरी दबाव भी काम कर रहे हैं। रूसी अर्थव्यवस्था के संकटग्रस्त होने तथा रूसी खेमे के खम्भे उखड़ जाने से पैदा हुए अनुकूल माहौल में पश्चिमी साम्राज्यवादियों और खासकर अमेरिकी साम्राज्यवाद ने मौका ताड़ा है और तीसरी दुनिया के देशों पर उनकी पूंजी और तकनोलॉजी की आवश्यकताओं की विवशता का फायदा उठाकर वे मनमानी शर्तें थोप रहे हैं और अपने फायदों के मद्देनजर उनकी नीतियों की दिशा मोड़ने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक जैसी अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं इस मकसद में उनकी भरपूर मदद कर रही हैं। खुद भी संकटों से घिरे हुए इन साम्राज्यवादियों के अपने संकट जब भविष्य में गहराएंगे और उनकी आपसी प्रतिस्पर्धा जब तीव्र होकर सतह पर आएगी, तब हो सकता है कि इसका लाभ उठाकर तीसरी दुनिया के शासक इन दबावों से कुछ हद तक निजात पा सकें, लेकिन फिलहाल तो विकल्पहीनता में पड़े हुए तीसरी दुनिया के सत्ताधारी आज उनके सामने घुटने टेकने पर मजबूर हो रहे हैं। भारत की नई सरकार द्वारा घोषित नई नीतियों और 1991–92 के बजट पर इन मजबूरियों की छाप एकदम साफ दिखाई देती है।

रूपये के अवमूल्यन, अप्रत्यक्ष करों में बढ़ोत्तरी, आयात के उदारीकरण, उद्योगों के निजीकरण की नीतियों, बाजार और पूंजीनिवेश के नियंत्रणों को समाप्त करके और वित्तीय अनुदानों में कटौती कर नई सरकार ने भुगतान सन्तुलन के तात्कालिक संकट को टालने के लिए अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष से आपातकालीन राशि तो प्राप्त कर ली है लेकिन क्या इससे आफत टल जाएगी?

अतीत के अनुभव और देश की अर्थव्यवस्था का गणित तो कम से कम यही बताता है कि रूपये के अवमूल्यन, आयात के उदारीकरण और बाजार में प्रतियोगिता को खुला करने की नीति से निर्यात में बढ़ोत्तरी होने और इस तरह विदेशी मुद्रा भण्डार में बढ़ोत्तरी कर भुगतान सन्तुलन के संकट को दूर करने की आशा आकाश-कुसुम को तोड़ने की अभिलाषा है। यदि ब्राजील, मैक्सिको, अर्जेण्टीना आदि देशों में अपनाया गया अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक का यह फार्मूला उन्हें कर्ज के मकड़जाले में फंसने से नहीं रोक पाया तो भला भारत किस तरह इसका अपवाद बन जाएगा। यह सोच भी महज एक खुशफहमी है कि उदारीकरण के जरिए आने वाला विदेशी पूंजी और तकनोलॉजी का प्रवाह अन्तरराष्ट्रीय बाजार की होड़ में आगे बढ़ाएगा। अन्तरराष्ट्रीय बाजार में हावी साम्राज्यवादी जब खुद ही अपने व्यापार घाटे को नहीं सुधार पा रहे हैं, तो भारत के सत्ताधारी कैसे इसकी उम्मीद करके बैठे हैं? और वैसे भी, फिलहाल अब तक इस बात के बहुत अच्छे संकेत नहीं मिल रहे हैं कि बेहद 'आकर्षक' छूटों के बावजूद विदेशी कम्पनियां उपभोक्ता सामग्रियों के अतिरिक्त किसी अन्य महत्वपूर्ण बड़े उद्योग में पूंजी लगाने के प्रति ज्यादा आकर्षित होंगी। कुल मिलाकर, भुगतान सन्तुलन के संकट का कोई समाधान निकलता नहीं दिखाई पड़ता और नतीजतन यह कहना कि भारत मैक्सिको या ब्राजील नहीं बनेगा, एक छलावा ही होगा।

बाजार पर नियंत्रणों के हटने और निजीकरण का नतीजा भी बजट के प्रावधानों के साथ मिलकर अपरिहार्यतः अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि के रूप में सामने आने वाला है। जब नियंत्रित बाजार ही कीमतों में बढ़ोत्तरी की रफ्तार पर अंकुश नहीं लगा सका तो अनियंत्रित बाजार, वित्तीय अनुदानों में कटौती और परिवहन व्यय में बढ़ोत्तरी के मिले-जुले प्रभाव पर सिर्फ 'मुक्त' बाजार की प्रतिस्पर्धा से लगाम लग जाएगी और यह कीमतों को बढ़ने से रोकेगी, ऐसा तो सामान्य गुणाभाग जानने वाला भी नहीं कह सकता। दावे करना तो चुनावी राजनीतिज्ञों का शगल है तो भला मनमोहन सिंह एण्ड कम्पनी ही इसमें क्यों पीछे छूटे! उद्योगों के निजीकरण और आधुनिकीकरण का नतीजा होगा मजदूरों की व्यापक पैमाने पर छटनी और रोजगारों के सीमित अवसरों में और भी कटौती। फलस्वरूप पहले से ही मौजूद बेरोजगारों की तादाद में तेजी से बढ़ोत्तरी होते जाने को भी रोका नहीं जा सकता।

संक्षेप में, नई सरकार की नीतियां और 1991–92 का बजट अर्थव्यवस्था को संकटों के दुष्चक्र से बाहर निकालने के बनिस्बत उसे और भी गहरे धंसाएगी, सामाजिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज होगी और देश की आम जनता के लिए आने वाले दिन भारी मुसीबतों-तकलीफों के दिन होंगे। अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि, बेरोजगारी और आर्थिक-राजनीतिक तंत्र के भ्रष्टाचार के बोझ तले जिन्दगी और भी दुश्वार बन जाएगी। इन परिस्थितियों में समाज के केवल सबसे गरीब तबके को ही नहीं, वरन मध्यमवर्ग के एक बड़े हिस्से के लिए भी इस बोझ को उठा पाना दिन–प्रतिदिन मुश्किल होता जाएगा।

देश की अर्थव्यवस्था के इस अन्तकालिक संकट को दूर करने के उपायों की जो परिणति भविष्य में दिखाई पड़ रही है, वह पहले से ही मौजूद राजनीतिक संकट को घटाने की बात तो दूर, बढ़ाने ही जा रही है और देश भविष्य के चुनावों में भी 'त्रिशंकु' संसद का साक्षी बनने जा रहा है, क्योंकि आर्थिक संकट के लगातार बढ़ते जाने के फलस्वरूप सत्ताधारी वर्गों के स्वार्थ के झगड़े भी बढ़ते जाएंगे। इसके साथ ही बहुराष्ट्रीय नियमों की घुसपैठ और अपने मुनाफे को येन–केन प्रकारेण आगे बढ़ाने की हवस के चलते राजनीतिक तंत्र में भी उनकी घुसपैठ होगी और उनकी जोड़–तोड़ भारतीय राजनीति को अवश्य ही प्रभावित करेगी। इन सारी स्थितियों के मद्देनजर किसी ऐसे नए गठबन्धन की आशा भी क्रमशः धूमिल होती जाएगी, जिसे आम जनता सिर आंखों पर बैठाकर संसद की चौखट तक पहुंचाएगी। नतीजतन नए–नए संवैधानिक संकट फिर-फिर पैदा होंगे, और इन राजनैतिक-संवैधानिक संकटों के प्रतिक्रियास्वरूप विद्यमान आर्थिक संकट और त्वरान्वित होंगे।

इन आर्थिक-राजनीतिक संकटों के अभिशाप से सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन और भी दूषित और असह्य बनता जाएगा। समाज में निराशा, कुण्ठा, अराजकता और अलगाव का बोलबाला होगा, और इसकी बुनियाद पर देश के सत्ताधारी दिन–ब–दिन ज्यादा से ज्यादा निरंकुश होते चले जाएंगे।

मौजूदा हालात और इसका भविष्य यही बता रहे हैं कि आज देश का समूचा सामाजिक-आर्थिक ढांचा ही अन्तकालिक रोगों से ग्रस्त हो चुका है अब इसके इलाज की कोई गुंजाइश नहीं बची है। समाज–व्यवस्था जड़ हो चुकी है।

अब एक क्रान्तिकारी विकल्प ही इस व्यवस्था का स्थानापन्न बन सकता है। अब एक नई बुनियाद पर खड़ी एक नवीन सामाजिक-आर्थिक संरचना की ऊर्जस्विता ही समाज को नए सिरे से गतिशील बना सकती है और एक जीने लायक स्वस्थ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण कर सकती है।

वित्तमंत्री की 'दरियादिली'

सरकार द्वारा चलाई जाने वाली स्वतः रोजगार योजनाओं के अंतर्गत बेरोजगारों को बांटे जाने वाले ऋणों की असलियत क्या है इस बात का पता इस बार के बजट में इस मद पर आवंटित धनराशि पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालने से ही स्पष्ट हो जाती है।

1991–92 के केन्द्रीय बजट के प्रावधानों में डा० मनमोहन सिंह ने शिक्षित बेरोजगारों को अपने उद्योग और व्यापार शुरू करने के लिए 57 करोड़ रूपये का बन्दोबस्त किया है। कितनी बड़ी धनराशि लगती है? यह लेकिन यह खैरात सवा लाख शिक्षित युवाओं के बीच बांटी जाएगी। हिसाब–किताब लगाने पर आंकड़ा यह निकलता है कि एक 'सौभाग्यशाली' युवा को 4650 रूपये की खैरात मिलेगी। वैसे, ध्यान देने की बात यह है कि आजकल एक पान की दुकान खोलने के लिए भी कम से कम 5000 रुपये या इससे भी अधिक के प्रारम्भिक पूंजीनिवेश की आवश्यकता होती है।

अब भी क्या किसी को हमारे वित्त मंत्री की 'काबिलियत और दरियादिली' पर कोई शुबहा बाकी रह जाता है?

गोरखपुर विश्वविद्यालय

प्रवेश परीक्षा से योग्यता के तर्क की कलई खुली

(निजी संवाददाता)

गोरखपुर। प्रवेश परीक्षा के सन्दर्भ में अकादमीशियनों और शिक्षा नीति विशारदों द्वारा यह तर्क दिया जाता रहा है कि इसके द्वारा योग्य छात्रों की छटनी की जाएगी। लेकिन गोरखपुर विश्वविद्यालय में हुई पहली प्रवेश परीक्षा ने ही इस तर्क की पोल खोल कर रख दी। प्रवेश परीक्षा आयोजित करने में भारी पैमाने पर अनियमितताएं और धांधलियां हुईं। यहां तक कि कुछ केन्द्रों पर प्रश्नपत्रों और उत्तर-पुस्तिकाओं के बंडल पहले से ही खुले पाए गए। कुछ प्रश्न पत्रों में कई–कई पेज छपे हुए ही नहीं थे और तमाम उत्तर पुस्तिकाओं में स्टेपल्स गायब थे। इसके साथ ही प्रवेश पत्र समय से न पहुंच पाने के चलते काफी छात्र परीक्षाओं में शामिल ही नहीं हो सके। ध्यान देने योग्य बात यह है कि विश्वविद्यालय प्रशासन ने प्रवेश फार्म को तो रजिस्टर्ड डाक से मंगवाने की शर्त रखी थी जब कि छात्रों को प्रवेश पत्र सामान्य डाक से ही भेजे गए थे। इन अनियमितताओं और धांधलियों से छात्रों के चयन में विश्वविद्यालय प्रशासन की ईमानदारी पूरी तरह सन्दिग्ध हो जाती है।

दो वर्षों तक छात्रों के प्रबल विरोध के कारण विश्वविद्यालय प्रशासन अपनी लाख कोशिशों के बावजूद प्रवेश परीक्षा को लागू नहीं कर सका था। लेकिन इस बार छात्रों की बिखरी ताकत के चलते इस मुद्दे पर छात्रों का कोई संगठित विरोध सामने नहीं आ सका और मौके की ताक में बैठा विश्वविद्यालय प्रशासन इस जन–विरोधी प्रवेश पद्धति को लागू करने में कामयाब हो गया।

विश्वविद्यालय प्रशासन का यह कदम विश्वविद्यालय को नयी शिक्षा नीति के नक्शे कदम पर संचालित करने की दिशा में उठाया गया एक निर्णायक कदम है। पिछले सत्र में प्रवेश के समय ही स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में सीटें घटाई जा चुकी थी और अब विश्वविद्यालय के हलकों में फीस बढ़ाने के सन्दर्भ में भी चर्चायें गर्म हैं। नई शिक्षा नीति को लागू करने की दिशा में उठाये जा रहे ये कदम आम घरों से आये हुए छात्रों पर भारी कहर बरपा करेंगे और धीरे–धीरे यह विश्वविद्यालय भी अन्य अभिजात्य विश्वविद्यालयों की तरह देश के अमीर और सुविधा सम्पन्न घरों से आये हुए छात्रों के लिए पूरी तरह सुरक्षित होता जाएगा और जनता की व्यापक आबादी उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित होती जाएगी।

बहरहाल, इन प्रवेश परीक्षाओं द्वारा छात्रों की जेबें काटकर विश्वविद्यालय प्रशासन मालामाल हो गया। आवेदन पत्रों के दाम, पंजीकरण शुल्क और प्रवेश परीक्षा शुल्क के रूप में विश्वविद्यालय को लगभग 4 लाख तक की आमदनी हुई जब कि खर्च नाम मात्र का ही हुआ।

उच्च शिक्षा पर रोक का एक और नमूना

गोरखपुर, 6 अगस्त (नि०सं) गोरखपुर विश्वविद्यालय में बी.ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश लेने वाले छात्र इस बार अपने मनचाहे विषयों के 'कम्बिनेशन' नहीं ले सके क्योंकि बी० ए० में उपलब्ध कुल विषयों को इस बार पांच ऐसे समूहों में बांट दिया है जिनमे से प्रत्येक समूह से दो विषय नहीं ले सकते।

प्रशासन के इस अतार्किक निर्णय का परिणाम यह हुआ है कि अर्थशास्त्र के साथ समाज शास्त्र या फिर मध्यकालीन इतिहास के साथ अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा रखने वाले छात्र इस बार इससे वंचित रहेंगे। इसी तरह प्राचीन इतिहास और अंग्रेजी साथ साथ नहीं लिया जा सकेगा तथा हिन्दी या उर्दू के साथ दर्शन शास्त्र एवं राजनीति शास्त्र के साथ गणित नहीं लिया जा सकेगा। इसे लेकर प्रवेशार्थियों के बीच भारी रोष है।

पाठकों से अपील

आह्वान कैम्पस टाइम्स का पहला अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अखबार के माध्यम से हम व्यापक छात्र समुदाय में क्रान्तिकारी चेतना का संचार करना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि **आह्वान** कैम्पस टाइम्स अन्याय के खिलाफ हर संघर्ष में छात्रों के लिए एक मंच की भूमिका निभाएगा।

इस अंक में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्रियों पर हम आपके सुझावों, परामर्शों तथा आपकी आलोचनाओं का स्वागत करेंगे। हमारी चाहत है कि इस अखबार के संचालन में आपकी अधिक से अधिक भागीदारी बने। आपका सहयोग इस अखबार को जिन्दा रखने की एकमात्र शर्त है।

☐ सम्पादक मण्डल

बिकाऊ माल बन चुकी है प्राथमिक शिक्षा

जुलाई महीने के खत्म होने के साथ ही प्राइमरी स्कूलों में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाने के लिए अभिभावकों की भागदौड़ भी खत्म हो चुकी है। 'प्रतिष्ठित' अंग्रेजीदां स्कूलों में भारी भीड़ के चलते इनके मालिकों के लिए ये स्कूल टकसाल बन गए हैं।

अंग्रेजी माध्यम के कांवेण्टी स्कूलों की बढ़ती मांग के चलते गली-गली में रोज-रोज शिक्षा की ये दुकानदारियां खुल रही हैं। सरकार की शिक्षा सम्बन्धी नीतियां और सरकारी प्राइमरी स्कूलों की दुर्व्यवस्था इसके लिए खाद-पानी का काम कर रही है। जर्जर स्कूली इमारतें, टूटे-फूटे ब्लैकबोर्ड, तार-तार हो चुकी टाट-पट्टियां—किसी भी सरकारी स्कूल का मुआयना कर लीजिए, यही नजारा आपको दिखाई देगा। बहुतेरे स्कूलों में तो पीने का पानीं तक उपलब्ध नहीं है, शौचालयों का तो सवाल ही नहीं उठता। इस स्थिति में कोई भी अभिभावक इन स्कूलों में अपने बच्चों को भेजकर उसका भविष्य चौपट करने की तोहमत अपने सिर क्यों मढ़ना चाहेगा।

इन खस्ताहाल सरकारी प्राइमरी स्कूलों और नए सरकारी तामझाम आंगनबाड़ी स्कूलों में वे ही अभिभावक अपने बच्चों को दाखिल कराते हैं जो अपनी खस्ताहाल गृहस्थी के कारण बीस पच्चीस–पचास सौ या इससे भी अधिक माहवारी खर्च करके महंगे प्राइवेट स्कूलों में दाखिला दिलाने के बारे में सोच भी नहीं सकते।

गली–गली में कुकुरमुत्तों की तरह उग आए प्राइवेट स्कूल सरकारी प्राइमरी स्कूलों की इसी बदहाली और अंग्रेजीदां कांवेण्टी स्कूलों की बढ़ती मांग की जमीन पर उग रहे हैं। प्राइमरी शिक्षा अब लाभकारी धन्धा बन चुकी है और शिक्षा बिकाऊ माल। बाजार में उम्दा और घटिया दोनों तरह के माल बिक रहे हैं, और अपनी अपनी हैसियत के हिसाब से खरीदारों की होड़ मची हुई है। भविष्य में यह होड़ लगातार बढ़ती ही जाएगी क्योंकि शिक्षा के सम्बन्ध में न तो सरकारी नीतियां बदलने वाली हैं और न ही सरकारी प्राइमरी स्कूलों की हालत सुधरने वाली है।

● संजय श्रीवास्तव

परीक्षा सम्बन्धी ऊहापोह खत्म हो चुकी है लेकिन.....

जैसी कि आशा थी, विश्वविद्यालय के खुलते ही परीक्षा का कार्यक्रम घोषित कर दिया गया और अगले सत्र के शून्य हो जाने के भय से आक्रांत छात्रों ने चैन की सांस ली। धीरे-धीरे परिसर में परीक्षा का माहौल गर्म होने लगा। लेकिन जल्दी ही इस माहौल में खलल पड़ गया जब पता चलने लगा कि वर्तमान सत्र के इतने लम्बे खिंच जाने के बावजूद बहुत सारी कक्षाओं में पाठ्यक्रम अभी पूरा नहीं हुआ है। और सबसे ताज्जुब की बात थी कि चुनावों के चलते लम्बी खिंच गई गर्मी की छुट्टियों के बावजूद प्रशासन खुद भी परीक्षाओं को आयोजित कराने के लिये पूरी तरह तैयार नहीं था।

इसके बाद शुरू हुआ परीक्षाओं को टलवाने का फिर उन्हें घोषित कार्यक्रमों के अनुसार करवाने की मांगों की अखबारी बयान बाजी का सिलसिला, कुछ छात्रों, स्वनामधन्य नेताओं द्वारा। और पिछले एक अर्से से विश्वविद्यालय में उछलने वाले हर मुद्दे की तरह इसमें भी प्रशासन के अन्दर मौजूद धड़ेबाजी ने पर्दे के पीछे से अपनी भूमिका निभाई।

कुछ दिनों पूर्व जब इस बयान बाजी से परीक्षा के बारे में छात्रों के बीच अनिश्चय का माहौल पैदा हो गया था तो इस बाबत हमारे इस नये अखबार के लिए जानकारी बटोरने गये एक मित्र से विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन के एक अधिकारी ने तो यहां तक कह दिया कि दरअसल प्रशासन की यह मंशा ही नहीं है कि अभी परीक्षाएं आयोजित की जाएं क्यों कि परीक्षा सम्बन्धी कोई भी तैयारी पूरी ही नहीं हुई है और परीक्षा टलवाने का अभियान वस्तुतः प्रशासन की शह पर ही शुरू हुआ है। खैर, अब जब

परिसर परिदृश्य

परीक्षाओं का घोषित कार्यक्रम के अनुसार होना प्रायः निश्चित लग रहा है तो इस बात को भी विश्वविद्यालय के विद्वत् वर्ग द्वारा रोज-रोज सायास फैलायी जाने वाली अफवाहों और अटकलबाजियों में से ही एक मान लेते हैं।

लेकिन प्रशासन ने परीक्षा का एक असन्तुलित कार्यक्रम जिस हड़बड़ी से घोषित कर दिया उससे इस बात को बल ही मिलता है कि परीक्षा को लेकर प्रशासनिक हलके में अफरातफरी मची हुई है। अगस्त से लेकर नवम्बर तक फैले इस बार के परीक्षा कार्यक्रम में इतने लम्बे वक्त के बावजूद अधिकतर कक्षाओं के छात्रों को दो प्रश्न पत्रों और यहां तक कि दो विषयों के बीच भी पर्याप्त गैप उपलब्ध नहीं है।

पिछले एक वर्ष से विश्वविद्यालय के सर्वोच्च पद को लेकर जैसी खींचातानी मची हुई थी और उसके इर्दगिर्द निहित स्वार्थी। शिक्षक मठाधीशों की गुटबाजी का जो नंगा नाच था उसके चलते आज विश्वविद्यालय की प्रशासनिक चुस्ती का आलम यह है कि सत्र और प्रवेश शुरू हो जाने के बावजूद अभी तक विश्वविद्यालय की विवरणिका भी नहीं छप पाई है। वैसे प्रशासन ने अपनी चुस्ती का सबसे जीवन्त प्रमाण प्रवेश परीक्षाओं को बड़ी ही सफलता के साथ आयोजित करके दे दिया है। सभी स्नातक कक्षाओं में प्रवेश के लिए पहली बार आयोजित इन प्रवेश परीक्षाओं के लिए जितने जोरशोर से नियम कानून घोषित किए गए और अभिजात विश्वविद्यालयों की तर्ज पर छात्रों पर जितने कड़े मापदण्ड थोपे गये उस सबका मजाक उस समय बन गया जब परीक्षा भवन में प्रश्न पत्र खुले पाए गए। प्रवेश परीक्षा का पूरा आयोजन इतना दुरुस्त था कि विश्वविद्यालय ने आवेदन पत्र तो रजिस्टर्ड डाक से मंगवाए, परन्तु उसके द्वारा साधारण डाक से भेजे गये प्रवेशपत्र आधे प्रवेशार्थियों तक समय से पहुंच ही नहीं पाए।

दरअसल सरकारी नीतियों और खासकर 'नेशनल पालिसी' का जो प्रकोप हमारे इस गरीब विश्वविद्यालय पर पड़ता है सो तो है ही, लेकिन विगत वर्षों से जारी प्रशासनिक खींचतान और गुटबाजी भी इसकी अक्षमता का एक खास कारण बनी हुई है पिछले दिनों अकादमिक गरिमा के सर्वोच्च पद के इर्दगिर्द जो थुक्कमफजीहत और मुकदमेबाजों के एक बड़े हिस्से की इसमें जो सक्रिय भूमिका रही वह भारतीय संसद के नेताओं और गांव के मुकदमेबाजों को भी शर्मिन्दा कर देगी। जो भी हो, पूर्वांचल के गांवों से आया हुआ इस विश्वविद्यालय का गरीब छात्र अराजकता के बीच भी इम्तहान तो दे ही लेगा, भले ही सत्र पिछड़ने के चलते अन्य किसी विश्वविद्यालय में उसका दाखिला न हो सके। तो सभी छात्रों को परीक्षा की शुभकामनाओं के साथ इति॥

आह्वान
कैम्पस टाइम्स

प्रवेशांक 7-21 अगस्त 1991

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री की वचनबद्धता

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय अर्जुन सिंह अपने बयानों में स्वर्गीय राजीव गांधी की नई शिक्षा नीति के प्रति नई सरकार की वचनबद्धता को दुहरा रहे हैं। उनके इन बयानों के क्या मायने हैं तथा शिक्षा जगत के लिए इनका क्या महत्व है ?

दरअसल नई शिक्षा नीति के फ्रेमवर्क के अन्तर्गत वे सारी जरूरतें और उपाय निहित हैं, जिन्हें शिक्षा के क्षेत्र में लागू करना मौजूदा संकटापन्न व्यवस्था और सत्तासीन वर्गों के लिए अपरिहार्य बन गया है। प्राइमरी शिक्षा को निजी हाथों में सौंपकर उसका व्यावसायीकरण कर देना तथा ग्रामीण क्षेत्रों के सुविधासम्पन्न तबकों के बच्चों के लिए नवोदय विद्यालयों की स्थापना; शिक्षा को रोजगारपरक बनाने की आड़ में माध्यमिक स्तर पर कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के प्रपंच के जरिए उच्च शिक्षा में 'बढ़ती भीड़' को रोकना; उच्च शिक्षामें 'बढ़ती भीड़' को रोकने और गुणवत्ता बढ़ाने के बहाने प्रवेश परीक्षाएं लागू करना, सीटों में कटौती करना तथा फीसें बढ़ाना; परिसरों में बढ़ती अराजकता को रोकने और तथाकथित 'अराजनीतिकरण' करने के बहाने छात्रों और शिक्षकों के जनतांत्रिक अधिकारों का अपहरण कर शिक्षा जगत में निरंकुशशाही की जड़ों को मजबूत करना और डिग्री का रोजगार से सम्बन्धविच्छेद कर देना—यही वे उपाय थे जो नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षा की 'समस्याओं' से निपटने के नाम पर सुझाए गये थे । संक्षेप में नई शिक्षा नीति का सार था—शिक्षा को पूंजीनिवेश का क्षेत्र घोषित कर सबको शिक्षा और रोजगार देने की नैतिक जिम्मेदारी से ही सरकार का बरी हो जाना।

1984 में जब राजीव गांधी ने नई आर्थिक नीति और नई शिक्षा नीति का ऐलान किया था उस समय इसके पीछे देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे के संकटों के जो दबाव काम कर रहे थे, वे आज और भी घनीभूत हो गये हैं। देश की आन्तरिक स्थितियां तो और बदतर हुई ही हैं, साथ ही, दुनिया के पैमाने पर भी महत्वपूर्ण बदलाव घटित हुए हैं।

रूसी साम्राज्यवादी खेमेबन्दी के बिखर जाने के बाद पश्चिमी साम्राज्यवाद और खासकर अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अवसर भयंकर बेहद आक्रामक तेवर अपना लिया है और तीसरी दुनिया के देशों पर अपना दबाव काफी बढ़ा दिया है । यही वजह है कि निजीकरण और 'उदारीकरण' की जिन नीतियों के ट्रैक पर देश की अर्थव्यवस्था की गाड़ी को राजीव गांधी ने धीरे-धीरे खिसकाने की रणनीति अपनाई थी, नरसिम्हा राव आज उसी ट्रैक पर गाड़ी को सरपट भगाने के लिए मजबूर हो रहे हैं। बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ते बजट घाटे और चालू घाटे को कम करने की जिस जरूरत ने उच्च शिक्षा में बढ़ती भीड़ को रोकने, डिग्री का रोजगार से सम्बन्ध विच्छेद करने और शिक्षा पर सरकारी खर्चों में कटौती करके शिक्षा को पूंजीनिवेश का क्षेत्र घोषित कर उसे लाभ-हानि के गणित के आधार पर संचालित करने की नीति बनाने के लिए सरकार को बाध्य किया था, हालात के इन नए दबावों ने नई सरकार के लिए इन जरूरतों को कई गुना बढ़ा दिया है। निजीकरण और 'उदारीकरण' की नीतियों पर तेजी के साथ अमल करने का नतीजा होगा बेरोजगारी की रफ्तार में और तेजी से बढ़ोत्तरी। और नई सरकार इसके नतीजे के प्रति बेहद चौकन्नी है। बढ़ती बेरोजगारी से लगातार तीखे होते जाने वाले छात्र-युवा आक्रोश की आशंका तेज धार वाली तलवार बनकर नई सरकार के सिर पर लटकी हुई है। इसीलिए, कैम्पसों में निरंकुशशाही का राज कायम करने की गरज भी आज ज्यादा बढ़ गयी है। श्रीमान अर्जुन सिंह के बयान नई सरकार की इन्हीं जरूरतों और आशंकाओं की जमीन से पैदा हो रहे हैं।

अर्थात्, 1984 से चल रहा नई शिक्षा नीति का बुलडोजर आगे और तेज रफ्तार से घूमेगा। क्या शिक्षा जगत अर्जुन सिंह के बयान को एक गम्भीर चेतावनी के रूप में ले रहा है ? क्या छात्र-युवा अपनी बिखरी हुई फौज को गोलबन्द कर सत्ताधारियों के इस नए हमले का नए सिरे से पुरजोर मुकाबला कर पायेंगे, हमारे लिए सोचने का मुद्दा यह है।

9 अगस्त (भारत छोड़ो दिवस) के अवसर पर

संघर्षों की विरासत को आगे बढ़ाओ !

□ मुकुल श्रीवास्तव □

9 अगस्त का दिन स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में आए एक नए मोड़-बिन्दु—एक नए दौर का सूचक है। यह दिन स्वतंत्रता संग्राम के दौरान छात्रों-नौजवानों के गौरवशाली संघर्षों और उनके अकूत बलिदानों की यादगार है।

आज से लगभग आधी शताब्दी पूर्व 9 अगस्त 1942 को 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' के गगन भेदी नारों के साथ भारतीय जनता के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष ने निर्णायक दौर में प्रवेश किया। इस महाजनविद्रोह की लपटें देखते ही देखते पूरे देश में फैल गईं। इस आन्दोलन की सबसे खास बात यह थी कि छात्रों और नौजवानों ने इसमें हिरावल दस्ते की भूमिका निभाई थी और देश भर में उन्होंने बहादुराना संघर्षों और कुर्बानियों की अनोखी और अविश्वसनीय मिसालें पेश कीं।

1942 के इस विराट जनान्दोलन में पूर्वांचल के छात्र-नौजवान भी पीछे नहीं थे। उन्होंने भी देश के अन्य हिस्सों में आजादी का परचम उठाए अंग्रेजी हुकूमत के तोप के गोलों को अपने सीने पर सहते भाइयों की कतार में शामिल होना अपना फर्ज समझा और जैसे कुर्बानी देने की एक होड़ सी लग गई । बलिया में तो चित्तू पाण्डेय के नेतृत्व में कुछ दिनों के लिए आजाद सरकार भी कायम हो गई थी। पूरे देश भर में मजदूरों-किसानों ने इस आन्दोलन की अगली कतारों में चल रहे छात्रों-नौजवानों का बेहद जोशोखरोश से साथ दिया। पूरे देश में संचार तथा यातायात ठप्प कर दिया गया और महीनों तक प्रशासन लुंज-पुंज पड़ा रहा।

हालांकि, '42 के इस आन्दोलन में छात्रों-नौजवानों की ही पहलकारी और नेतृत्वकारी भूमिका थी, लेकिन आन्दोलन के उत्तरवर्ती दौर में छात्र-युवा अपनी अग्रणी भूमिका को बनाए नहीं रख सके। आन्दोलन के नेतृत्व की बागडोर खिसककर कांग्रेस के समझौतापरस्त नेतृत्व के हाथों में चली गई, जिसने इस आन्दोलन की आंच पर पानी छिड़कने का ही काम किया। कांग्रेसी नेतृत्व की इस समझौतापरस्ती और ब्रिटिश हुकूमत के बर्बर दमन से यह आन्दोलन यद्यपि कुचल दिया गया, लेकिन उपनिवेशवादी इस बात को अच्छी तरह समझ गये कि उनके शासन के अन्तिम संस्कार के दिन बेहद करीब आ पहुंचे, हैं। कुछ ही वर्षों के अन्तराल के बाद 1947 में जन-संघर्षों के बढ़ते दबाव और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान खोखली हो चुकी ताकत से विवश हो ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने सत्ता की कमान तत्कालीन कांग्रेसी नेतृत्व को सौंप दी।

'47 में अंग्रेज उपनिवेशवादी देश को छोड़कर चले तो गए और देश को राजनीतिक आजादी भी हासिल हुई, लेकिन यह आजादी अधूरी आजादी ही साबित हुई। 1942 में शुरू हुए छात्रों-नौजवानों के संघर्षों का कारवां अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सका। देशी सत्ताधारियों ने देश की जनता को लूटने का एक नया सिलसिला शुरू किया। देश की आजादी के बाद जो नई सामाजिक-आर्थिक इमारत खड़ी की गई, उसमें भी देश की आम मेहनतकश जनता के लिए कोई गुंजाइश नहीं बन पाई। वे देश की मिट्टी में ही पले-बढ़े लुटेरों की लूट का शिकार होते रहे और आज भी देश के सत्ताधारियों की लूट और डाकेजनी न केवल बदस्तूर जारी है वरन् यह मौजूदा समय में अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। देश के हुक्मरान जनता को लूटने की नई-नई तरकीबें और षड्यंत्रों का नया-नया जाल रच रहे हैं, और जनता इस लौह-शिकंजे से बाहर निकलने की आतुर-प्रतीक्षा में एक-एक दिन काट रही है।

आज देश के छात्रों-युवाओं को शासकों की इन साजिशों को चकनाचूर करते हुए जनता की मुक्ति के द्वार को खोलना होगा। समूची जनता की सम्पूर्ण और सच्ची आजादी की लड़ाई को मंजिले-मकसूद तक पहुंचाने की शपथ लेकर ही हम 9 अगस्त की याद को सार्थक बना पाएंगे। देश की धरती में जज्ब '42 के शहीदों के लहू की यही पुकार है।

क्या है शस्त्र कटौतियों के पीछे की हकीकत ?

31 जुलाई को मास्को में रूस और अमेरिका के बीच लम्बी दूरी के एटमी मिसाइलों में कटौती करने की जो 'रणनीतिक शस्त्र परिसीमन संधि' (स्टार्ट) हुई, उसकी पूरी दुनिया की मीडिया ने 'विश्व शान्ति के एक 'नए युग की शुरूआत' के रूप में चित्रित किया। लेकिन क्या इस मामले में आश्वस्त होने की वाकई कोई गुन्जाइश है ?

आज सभी साम्राज्यवादी देशों के बीच जो आम सहमति और अमन का माहौल दिखायी दे रहा है उसके पीछे इन सभी लुटेरों की अपनी मजबूरियां और निहित स्वार्थ हैं। आज जबकि, अपने आन्तरिक संकटों से बुरी तरह परेशान सोवियत साम्राज्यवाद ने अमरीका के सामने घुटने टेक दिये हैं; रूस के मुकाबले और पश्चिमी साम्राज्यवादियों के बीच अमेरिकी साम्राज्यवाद की वरीयता सुदृढ़ हो गयी है। अतः इन साम्राज्यवादी देशों के बीच तुरन्त किसी विश्व युद्ध की सम्भावना दिखायी नहीं देती है। इस मौके का फायदा उठाकर पहले के दोनों साम्राज्यवादी खेमों के सरगने अपने-अपने हथियारों के अनावश्यक जखीरों से मुक्ति पा रहे हैं। लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं हैं कि सभी साम्राज्यवादी देशों के बीच आम सहमति और मित्रता कायम हो गयी है,

उरुग्वे चक्र की व्यापार वार्ता के दौरान और उसके बाद विगत दिनों सम्पन्न हुई जी-7 की शिखर वार्ता में भी साम्राज्यवादियों के बीच कई मुद्दों पर तीखे मतभेद उभर कर सामने आ गये । उनके बीच अगर किसी बात पर सहमति थी तो तीसरी दुनिया को समवेत

विश्व पटल

लूटने पर । लेकिन इस मुद्दे पर भी मतभेद उभर आया, वह यह था कि यूरोपीय साम्राज्यवादी देश चाहते थे कि तीसरी दुनिया के देशों पर कर्जों की कटौती की जाए जिससे कि अमरीका के समानान्तर उन देशों के शोषण में वे भी हिस्सा बंटा सके। सोवियत संघ को मदद देने के मामले में भी सहमति नहीं हो पायी और उसने भविष्य में पैदा होने वाली साम्राज्यवादी खेमेबंदियों और उसके बीच होने वाली भावी लूट की प्रतिस्पर्धा की एक झलक दे दी।

यह समझना एक भोलापन होगा कि 'स्टार्ट' सन्धि के तहत लम्बी दूरी के एटमी मिसाइलों में तीस फीसदी कटौती से साम्राज्यवादी जंगुजुओं की मारक और उनकी विध्वंसक क्षमता खत्म हो रही है। पड़ेगा। तीसरी पीढ़ी के और अधिक खतरनाक और राडार से अदृश्य हथियारों के विकास का काम लगातार जारी है ।

युद्ध के बिना भी तीसरी दुनिया के देशों के प्रति उनका रवैया ऐसा ही है। आज जबकि उनकी आपसी प्रतिस्पर्धा अभी शान्त है, अमेरिका की सरगनेदारी में पश्चिमी साम्राज्यवाद तीसरी दुनिया के देशों को ऋणों, वित्तीय संस्थाओं और अन्य आर्थिक उपायों के जरिये अपने आर्थिक नवउपनिवेशवादी मकड़-जाले में और भी बुरी तरह फंसा लेने के लिये आतुर हो गया है। साम्राज्यवादियों के बीच तात्कालिक सुलह के इस माहौल को विश्वशांति का पर्याय नहीं समझना चाहिये। साम्राज्यवादी साम्राज्यवादी होते है और येन-केन-प्रकारेण अंधी लूट पर ही इनका अस्तित्व टिका होता है।

साहित्य

बच्चों को स्वाधीन बनाओ

☐ प्रेमचन्द (अप्रेल 1930)

बहुत से लोग यह शीर्षक देख कर ही चौंक पड़ेंगे। वाह! लड़के तो आप ही स्वाधीन होते हैं। वह तो बचपन ही में न पुट्ठे पर हाथ रखने देते हैं, न मुंह में लगाम डालने देते हैं और जहां जरा समझ आयी कि सरपट दौड़ना शुरू कर देते हैं। जरूरत है कि उन्हें आज्ञा पालन सिखाओ, बड़ों का अदब करना सिखाओ, संयम सिखाओ। उन्हें स्वाधीन बनाना तो ऐसा ही है, जैसा आग पर तेल छिड़कना।

यह समय है कि लड़के आजकल उससे कहीं ज्यादा स्वाधीन हैं, जितने कि उनके माता-पिता इस उम्र में खुद थे। इस स्वाधीन प्रवृत्ति का जो नतीजा हो रहा है, उसे देखकर यदि माता-पिता के मन में ऐसी शंका पैदा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, लेकिन इसीलिए तो जरूरत है कि लड़कों को स्वाधीन बनने की शिक्षा दी जाये। बालक जितना ही बलशाली होगा, उतना ही स्वाधीन भी होगा, लेकिन अभी हम उसे इसकी शिक्षा नहीं देते। अगर युवकों को फौज के लिए भरती किया जाये, तो उन्हें कवायद सिखाने की जरूरत होती है। अगर वे गायक बनना चाहें, तो यह सम्भव नहीं है, कि बिला सिखाये आप ही आप गाने लग जायें, लेकिन यह देखकर भी कि हमारे बालक वृन्द जितने स्वाधीन आज हैं, उतने किसी अतीत काल में न थे। हम उन्हें बचपन से इस समस्या को हल करने की उचित शिक्षा नहीं दे रहे हैं।

थोड़े शब्दों में, बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके।

यह तो मानी हुई बात है कि आज के बालक स्वाधीन हैं, और अब किसी के बस की बात नहीं है कि इस दशा को पलट दे। इसके बहुत से कारण हैं—परिवारों का देहातों से निकलकर शहरों में आबाद होना, जहां परिचित जनों के दबाव और स्वभाव से लोग मुक्त हो जाते हैं, पुराने नीति–व्यवहारों का शिथिल हो जाना, जिनका पहले विद्रोही युवकों पर बहुत दबाव पड़ता था। मोटर-कार, सिनेमा और समाचारपत्र सब स्वाधीनता की प्रवृत्ति को मजबूत करते हैं।

लेकिन इस पर आंसू बहाने से काम न चलेगा। पुराने जमाने में जब बड़ों का हुक्म और अदब मानना समाज का सबसे मान्य नियम था और हर एक छोटी जाति अपने से ऊँची जाति के सामने अदब से सिर झुकाती थी, तब बालकों को बचपन ही से अदब करना सिखाया जाता था और उचित भी था, लेकिन आज किसी बाहरी सत्ता की आज्ञाओं को मानने की शिक्षा देना बालकों की सबसे बड़ी जरूरत की तरफ से आँखें बन्द कर लेना है। युवकों के सामने आज जो परिस्थिति है उसमें अदब और नम्रता का इतना महत्व नहीं है, जितना व्यक्तिगत विचारों और कामों की स्वाधीनता का।

इस नयी शिक्षा का आशय क्या है? आज्ञा-पालन हमारे जीवन का एक अंग है और हमेशा रहेगा। अगर हर एक आदमी अपने मन की करने लगे, तो समाज का शीराजा बिखर जायगा। अवश्य हर एक घर में जीवन के इस मौलिक तत्व की रक्षा होनी चाहिए, लेकिन इसके साथ ही माता-पिता की यह कोशिश भी होनी चाहिए, कि उनके बालक उन्हें पत्थर की मूर्ति या पहेली न समझें। चतुर माता-पिता बालकों के प्रति अपने व्यवहार को जितना स्वाभाविक बना सकें, उतना बनाना चाहिए, क्योंकि बालक के जीवन का उद्देश्य कार्य-क्षेत्र में आना है, केवल आज्ञा मानना नहीं। वास्तव में जो बालक इस तरह की शिक्षा पाते हैं, उनमें से आत्म-विश्वास का लोप हो जाता है। वे हमेशा किसी की आज्ञा का इन्तजार करते हैं। हम समझते हैं कि आज कोई बाप अपने लड़के को ऐसी आदत डालनेवाली शिक्षा न देगा।

दूसरा सिद्धान्त यह है कि माता-पिता को कोई बात खुद न तय करनी चाहिए, बल्कि लड़कों पर ही छोड़ देनी चाहिए। एक बादशाह ने जब अपने बालक को एक अध्यापक को सौंपा, तो यह सलाह दी—जितनी जल्दी हो सके, अपने को बेकार बना लेना। हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम सदा अपने लड़के से अपनी आज्ञाएं मनवाते रहें, बल्कि उनको इस योग्य बना दें, कि वह खुद अपने मार्ग का अपने आप निश्चय कर लें। युवकों में यह प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही सफल उनकी शिक्षा भी समझनी चाहिए।

तीसरा सिद्धान्त यह है कि गृहस्थी को जनतन्त्र के कायदों पर चलाना चाहिए। तजुर्बे से यह बात मालूम होती है, कि हम जनतन्त्र पर चाहे कितना ही विश्वास क्यों न रक्खें, हमारे घरों में स्वेच्छाचार ही का राज्य है। घर का मालिक मुसोलिनी या कैसर की तरह डटा हुआ उसे जिस रास्ते चाहता है, ले जाता है, और कभी इसका उलटा दिखायी देता है। घर में न कोई कायदा है न कोई कानून। जो जिसके जी में आता है, करता है जैसे चाहता है रहता है; कोई किसी की खबर नहीं लेता। लड़के अपनी राह जाते हैं, जवान अपनी राह और बूढ़े अपनी राह। दोनों ही तरीके जनतन्त्र से कोसों दूर हैं—पहले तरीके में स्वतन्त्रता का नाम नहीं, दूसरे तरीके में जिम्मेदारी का। यह दोनों तरीके लड़कों की शिक्षा की दृष्टि से अनुचित हैं। करना यह चाहिए, कि घर के मामलों में शुरू ही से बच्चों की राय ली जाये। छोटा बालक भी—अगर उसको सीधे रास्ते पर लगाया जाये—अपनी जिम्मेदारी को समझने लगता है। जिन लड़कों के साथ मां-बाप बुरा व्यवहार करते हैं, वे भी उनके साथ सच्चा स्नेह रखते हैं, मगर मां-बाप उनकी इस प्रकृति को अपने स्वेच्छाचार से कुचल डालते हैं और उसका बुरा नतीजा हम रोज अपनी आंखों से देखते हैं।

हर एक मामूली आदमी को यह जानकर गर्व और आनन्द होता है कि घर में उसका भी कोई स्थान है, वह भी कुछ समझा जाता है। बालक भी इस भाव से खाली नहीं होता। सफल परिवार का सबसे बड़ा रहस्य यह है कि वह इस प्रवृत्ति को व्यवहार में लावे। ऐसा बालक सदैव परिवार के सम्मान की रक्षा करेगा। यहां उसे स्वाधीन राय कायम करने का पाठ मिल रहा है। हो सकता है कि इस विषय में कुछ लोगों का कड़वा तजुर्बा हो—युवकों ने परिवार के हित की ओर ध्यान न देकर अपने ही अधिकारों पर जोर दिया हो। अभिमान और विलास उनकी राय में आजकल के युवकों में जरूरत से ज्यादा मौजूद हैं, लेकिन यह बालक का दोष नहीं, मां-बाप का दोष है। बालकों को यह शिक्षा देने के लिए समय, धैर्य, बुद्धि और सहानुभूति की जरूरत है। इसका आशय यह है कि बच्चा ज्यों ही आने और पैसे में फर्क समझने लगें, उनके हाथ में पैसे दिये जायें, उनका वजीफा बांध दिया जाये और कुमारावस्था में ही उन्हें इस योग्य बना दिया जाये कि वे पैसे का मूल्य समझने लगें और खर्च को आमदनी के अन्दर रखने की आदत सीखें।

हम इन बातों पर ध्यान नहीं देते। कितने ही मां-बाप तो अपने लड़कों के विषय में उतने ही बेखबर होते हैं जितने अपने तोते या कुत्ते के विषय में। बदमाश और शरीफ बालकों की पारिवारिक स्थिति की परीक्षा ली जाये, तो सिद्ध हो जायगा कि बाल-चरित्र में जो दोष आ जाते हैं, उसका कारण घरवालों की लापरवाही है।

बच्चों में स्वाधीनता के भाव पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि जितनी जल्दी हो सके, उन्हें कुछ काम करने का अवसर दिया जाये। आमतौर पर यह समझा जाता है, कि अच्छे माता-पिता का कर्त्तव्य अपनी सन्तानों को कठिनाइयों से दूर रखना है। इसका फल यह है कि ऊंचे खानदानों में लड़के क्रियाहीन हो जाते हैं। जब उन्हें बिना कोई उद्योग किये ही सारी चीजें मिल जाती हैं, तो फिर वे काम क्या करें? हालांकि विचार शास्त्र का यह एक मोटा सिद्धान्त है कि लड़कों को अपने हाथ से, अपने उद्योग से, कोई काम कर दिखाने में या कोई चीज बनाकर खड़ी कर देने में, जितना आनन्द मिलता है, उतना और किसी बात में नहीं। लड़का अपनी कागज की नाव पानी में डालकर जितना खुश होता है, उतना बड़े-बड़े विशाल जहाजों को चलते देखकर नहीं होता।

हमारे सुचालित मदरसों में अब इस बात को लोग समझने लगे हैं कि लड़कों को हाथ से कुछ काम कराना अव्वल दर्जे का मानसिक और नैतिक साधन है। हर एक घर में ऐसा ही होना चाहिए। लड़कों में आत्म-विश्वास उत्पन्न करने का इससे उत्तम कोई साधन नहीं है।

सम्पन्न घरों में अपने हाथ से कुछ करना अपमान समझा जाता है। लड़कों के हर एक काम के लिए नौकर लगे हुए हैं। आने-जाने के लिए मोटरें हैं, उन्हें सैर कराने के लिए खूब साफ कपड़े पहिना दिये जाते हैं और ताकीद कर दी जाती है कि कपड़े मैले न होने पावें। उनके मनोरंजन के लिए सिनेमा हैं, चित्रशालाएं हैं, जहां उन्हें केवल आंख से देखने की जरूरत है, खुद कुछ करना नहीं पड़ता। इससे परतन्त्रता की जो बुरी आदत पड़ जाती है, वह जिन्दगी भर साथ नहीं छोड़ती। ऐसे ही, विलास में पले हुए युवक हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए अपने भाइयों का अहित करते हैं, सरकार की बेजा खुशामद करते हैं।

हम बहुधा लड़कों को कोई नया काम करते देखकर घबड़ा जाते हैं। घड़ी छू रहा है, कहीं तोड़ न डाले! लड़के ने कलम हाथ में लिया और हां, हां, हां का शोर मचा! ऐसा नहीं होना चाहिए। लड़कों की स्वाभाविक रचनाशीलता को जगाना चाहिए। लड़का खिलौने बनाना चाहे, बेतार का यन्त्र बनाना चाहे, मछली का शिकार करना चाहे, तरकारियां पैदा करना चाहे, कपड़े सीना चाहे, बीन बजाना चाहे, नाटकों में अभिनय करना चाहे, या कविता लिखना चाहे, उसे बाधा मत दो। अगर कोई बालक साल के चन्द हफ्ते भी प्राकृतिक शक्तियों के बीच में रहे, दरिया में किश्ती चलाये, मैदान में गाड़ी चलाये या फावड़ा लेकर खेत में काम करे, तो उसे आत्म-विश्वास का जो अनुभव होगा वह पुस्तकों और उपदेशों से नहीं हो सकता। आश्चर्य तो यह है कि वह लोग भी, जिनकी जवानी कठिनाइयों में गुजरी, अपने बालकों को जीवन संग्राम के उत्साह बढ़ानेवाले कामों से बचाते हैं।

हम यहां यह बतला देना चाहते हैं कि स्वाधीनता से हमारा मतलब क्या है? इसका यह मतलब नहीं है कि हम बिला रोक–टोक जो कुछ चाहें करें और जो कुछ चाहें न करें। इसका मतलब यह है कि बाहरी दबाव की जगह हम में आत्म-संयम का उदय हो। सच्चा स्वाधीन आदमी वही है, जिसका जीवन आत्मा के शासन से संयमित हो जाता है, जिसे किसी बाहरी दबाव की जरूरत नहीं पड़ती। बालकों को इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर की आंखों से देखें।

कविता

छात्रों के प्रति

☐ बर्तोल्त ब्रेख्त

(1)

तुम वहां बैठते हो
पढने के लिए।
और कितना खून बहा था
कि तुम वहां बैठ सको।
क्या ऐसी कहानियां तुम्हें बोर करती हैं?
लेकिन मत भूलो कि पहले
दूसरे बैठते थे तुम्हारी जगह
जो बैठ जाते थे बाद में
जनता की छाती पर।
होश में आओ!

(2)

तुम्हारा विज्ञान व्यर्थ होगा, तुम्हारे लिए
और अध्ययन बांझ, अगर पढते रहे
बिना समर्पित किए अपनी बुद्धि को
लड़ने के लिए
सारी मानवता के सारे शत्रुओं के विरुद्ध

(3)

मत भूलो
कि आहत हुए थे तुम जैसे आदमी
कि पढ़ सको तुम यह', न कि दूसरे कोई
और अब मत मूंदो अपनी आंखें, और
मत छोड़ो पढ़ाई
बल्कि पढ़ने के लिए पढ़ो,
और पढ़ने की कोशिश करो
कि क्यों पढ़ना है।

(अनु० विश्वनाथ मिश्र)

पाठ्य पुस्तकों की किल्लत और कालाबाजारी से लोग त्रस्त हैं

गोरखपुर, 1 अगस्त (नि. सं.) स्कूलों–कालेजों के खुले एक माह गुजरने को आए लेकिन आज भी छात्रों और अभिभावकों को भारी दिक्कत का सामना करना पड़ रहा है। किताबों की भारी मात्रा में हो रही काला–बाजारी के चलते इनकी किल्लत की समस्या और अधिक बढ़ गई है तथा दाम आसमान छूने लगे हैं।

सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों वाली पुस्तकों को शहर में निर्धारित मूल्य से 10 प्रतिशत अधिक दाम लेकर बेचा जा रहा है। दूर-दराज के इलाकों एवं आस-पास के जिलों में, जहां किताबों की आपूर्ति यहीं से होती है, ये पाठ्य पुस्तकें और अधिक कीमतों में बिक रही हैं। जिला-धिकारी के बार-बार आश्वासनों के बावजूद किताबों की काला–बाजारी बदस्तूर जारी है।

1987-88 के बाद से कक्षा 9 से लेकर कक्षा 12 तक की सरकारी पुस्तकें छपवाई ही नहीं गई हैं। राज्य सरकार द्वारा 1984–85 के बाद से सरकारी पाठ्य पुस्तकों के मूल्यों को संशोधित न किए जाने से भी इनकी कालाबारी को शह मिल रही हैं। यह शिक्षा के प्रति सरकार के लापरवाही भरे रवैये का ही नतीजा है कि यह पाठ्य पुस्तकों के लिए सरकारी कागज का आवंटन नियमित रूप से नहीं कर रही है। प्रदेश के सभी सहायता प्राप्त विद्यालयों में चलने वाली इन पाठ्य पुस्तकों की खपत प्रतिवर्ष विद्यार्थियों की संख्या के साथ ही बढ़ती जाती है। अतः प्रतिवर्ष जुलाई-अगस्त के महीनों में इन पुस्तकों की किल्लत पैदा हो जाती है। परन्तु इस वर्ष स्थिति बहुत विकट हो गई है।

पिछले कई वर्षों से अमल में आ रही राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुरूप सरकार का ध्यान इन दिनों प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा से हटा हुआ है। केन्द्र सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा के प्रसार पर खर्च होने वाली धन–राशि घटा दी गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य सरकार द्वारा भी सरकारी पुस्तकों की छपाई हेतु रियायती कागज आवंटन का काम चुस्ती से नहीं हो पा रहा है और कागज की मूल्य वृद्धि की स्थिति में राजनियुक्त प्रकाशकों को दी जाने वाली सब्सिडी भी अनियमित और अपर्याप्त है।

सरकारी पाठ्यपुस्तकों के अभाव से परेशान छात्रों और अभिभावकों को जहां से पुस्तकें अधिक कीमत पर मिल भी जा रही हैं वहीं उन्हें इसके साथ कुञ्जियां, गाइडें और कापियां खरीदने को मजबूर किया जा रहा है। छात्रों और अभिभावकों की एक और परेशानी अन्य सहायक पुस्तकों और कापियों की कीमत में हुई भारी वृद्धि है। बक्शीपुर स्थित किताबों की दुकानों पर कई पुस्तक व्यवसायियों से सम्पर्क करने पर हमारे संवाद-दाताओं ने पाया कि कागज और छपाई के दामों में हो रही लगा-तार बढ़ोत्तरी के चलते विगत छह-सात महीनों के भीतर किताबों के दामों में लगभग 35%–40% तक की बढ़ोत्तरी हुई है।

किताबों के दामों में हो रही बढ़ोत्तरी पहले से ही महंगी-शिक्षा को और अधिक महंगी बनाती जा रही है। आम जनता के लिए अपने बच्चों की शिक्षा का बोझ वहन करना काफी मुश्किल होता जा रहा है।

गीडा की मनमानी लूट

गोरखपुर, 5 अगस्त (नि० सं०)। गोरखपुर औद्योगिक विकास प्राधिकरण (गीडा) औद्योगिक विकास के नाम पर शहर के नजदीक कृषि योग्य भूमि का अधिग्रहण करके गरीब किसानों से उनकी आजीविका छीन रहा है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार गोरखपुर औद्योगिक विकास प्राधिकरण (गीडा) जिस जमीन का अधिग्रहण कर रहा है वहां से शहर में नियमित हरी साग–सब्जियों और दूध आदि की सप्लाई की जाती है। शहर से थोड़ी ही दूर पर स्थित ऊसर और बंजर जमीनें अधिग्रहीत की जा सकती थीं।

ज्ञातव्य है कि लगभग तीन वर्ष पूर्व गोरखपुर विकास प्राधि-करण द्वारा रामगढ़ताल परियोजना के नाम पर जमीनों का अधिग्रहण किया गया था जिसके मुआ-वजों का पूरा भुगतान भी अभी तक नहीं किया गया है। अब परियोजना के खटाई में पड़ जाने के बाद उस जमीन को प्लाटों में बांट कर 80 रुपये प्रति वर्ग फुट की दर से बेचा जा रहा है। आम गरीब जनता से किसी विकास कार्य के नाम पर भूमि अधिग्रहीत कर उसे पुनः अमीरों में बेच कर मुनाफा कमाने के इस कृत्य से अभी भी मुआवजे के लिए चक्कर लगाते अधिग्रहित जमीन के मालिकों में रोष था ही अब गीडा के लिए अधिग्रहित जमीन के मालिकों में भी काफी रोष व्याप्त है।

बजट और औद्योगिक नीति

(पृष्ठ 1 कालम 5 का शेष)

से बाजार में कीमतें वैसे ही तेजी से ऊपर बढ़ी थीं। और अब पेट्रोल के मूल्य में 20 प्रतिशत की वृद्धि और डीजल को छोड़कर सभी पेट्रोलियम उत्पादों की मूल्यवृद्धि के चलते बाजार में रोजमर्रा की जरूरत की उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतों पर इसका भारी असर पड़ेगा। पहले रेल–मालभाड़े में वृद्धि और अब पेट्रोल की कीमतों में बढ़ोत्तरी से मालों के परिवहन की लागत बहुत बढ़ जाएगी और इसका सीधा असर बाजार में लगातार बढ़ती हुई चीजों की कीमतों पर पड़ेगा।

इस बार बजट में रासायनिक उर्वरकों पर सब्सिडी खत्म कर दी गई है जिससे उनकी कीमतों में औसतन 40 प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। इससे खाद्यान्नों की कीमतें एकबारगी तेजी से ऊपर चली जाएंगी। इसके साथ ही चीनी पर सब्सिडी की समाप्ति से यह राशन की दुकानों पर 85 पैसे महंगी हो गई है। खाद्यान्नों और चीनी के महंगे हो जाने के साथ ही खाने-पीने की सभी चीजों का महंगा होना लाजिमी है और यह कहने की जरूरत नहीं कि इस अतिरिक्त महंगाई की मार सबसे अधिक समाज के सबसे अधिक गरीब और मेहनतकश तबके और निम्नमध्यम वर्ग के लोगों पर पड़ेगी। परन्तु इस बार महंगाई जितनी तेजी से बढ़ेगी उससे मध्य वर्ग का एक भारी हिस्सा भी बुरी तरह प्रभावित होगा।

परन्तु बजट के ये प्रभाव उस नई औद्योगिक नीति की तुलना में कुछ भी नहीं है जिसे संसद में बजट के बाद प्रस्तुत किया गया।

नई औद्योगिक नीति में वित्त मंत्री के शब्दों में "भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नौकरशाहाना नियंत्रणों के मकड़जाले से मुक्त" कर दिया गया है, लेकिन इस मुक्त अर्थव्यवस्था में मुक्त गति से बढ़ने वाली मुद्रा–स्फीति की समस्या का उनके पास कोई जबाव नहीं है। इस औद्योगिक नीति के अन्तर्गत उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी पूंजीनिवेश की सीमा को बढ़ाकर 51 प्रतिशत तक कर दिया गया है, इजारेदारी पर लगभग सारे प्रतिबन्धों को हटा दिया गया है और 18 उद्योग क्षेत्रों को छोड़कर लाइसेंसिंग की व्यवस्था समाप्त कर दी गई है। देशी–विदेशी पूंजीपतियों की लूट की खुली छूट देकर व्यवस्था के वर्तमान संकट से थोड़ा निजात तो पाया जा सकता है लेकिन अगर अर्थव्यवस्था के वर्तमान संकट और तज्जन्य सामाजिक-आर्थिक संकटों की विकराल स्थिति का वस्तुगत विश्लेषण किया जाए तो यह बात साफ हो जायेगी कि वर्तमान उपायों से मुद्रास्फीति तेजी के साथ बढ़ेगी, महंगाई और बेरोजगारी कीर्तिमान ऊंचाइयों तक छूने लगेगी तथा निम्न मध्यवर्ग और मध्यम वर्ग के आम आदमी का जीना पहले हमेशा से कहीं अधिक दुश्वार हो जाएगा।

लेकिन, इस बजट को 'अमीरों के खिलाफ' बजट के रूप में पेश किया जा रहा है क्योंकि इसके द्वारा फ्रिज, एयर-कण्डीशनर, रंगीन टी० वी०, व वीडियो प्लेयर एवं रिकार्डर और कारों आदि विलासिता के कुछ सामानों पर करों के बढ़ जाने से उनकी कीमत बढ़ जाएगी। लेकिन असलियत ठीक इसके उल्टी है। होता यह है कि मध्यवर्ग के कुछ हिस्से जो इन साधनों में से कुछ का इस्तेमाल कर लेते थे, वे इससे वंचित हो जाते हैं और विलासिता की वस्तुएं उच्चवर्ग के लिए और अधिक आरक्षित हो जाती हैं। करों में वृद्धि से सरकार के राजस्वकोष में थोड़ी बढ़ोत्तरी भले ही हो जाती हो इससे देश के थोड़े से सुविधासम्पन्न लोगों के जीवनस्तर में कोई फर्क नहीं पड़ता।

इस नये अभियान के सहयात्री बनो!

(पृष्ठ 1 का शेष)

देश और दुनिया के हालात की इस तस्वीर से यह बात एकदम साफ तौर पर उभरकर सामने आती है कि आज दुनिया एक नए परिवर्तन के कगार पर खड़ी है। अन्धेरे के इसी गर्भ में एक नए सुन्दर भविष्य की रचना के बीज पलते हैं। आज के हालात की भी यही सच्चाई है। आज जरूरत है कि इस सच्चाई को जाना जाए, पहचाना जाए और भविष्य की रचना के लिए जरूरी प्रयासों को तेज कर दिया जाए।

आज हमारा देश आर्थिक-राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक जड़ता और ठहराव के जिस मुकाम पर पहुंच चुका है वहां से एक सर्वव्यापी-सर्वग्राही सामाजिक क्रान्ति का प्रबल वेगवाही प्रवाह ही उसे आगे बढ़ा सकता है। और हमेशा की तरह खतरों–चुनौतियों और कुर्बानियों से भरी इस जिम्मेदारी का दायित्व इतिहास ने छात्रों–नौजवानों के कन्धों पर सौंपा है। और इस दायित्व को पूरा करने के लिए सामाजिक परिवर्तन की प्रबल इच्छा शक्ति के साथ दृढ़निश्चय और संकल्पशक्ति के धनी छात्रों–युवाओं को आगे आना होगा। समाज में एक नए सामाजिक नवजागरण और प्रबोधन का बिगुल फूंकना होगा। निराशा और पस्तहिम्मती में पड़े सुप्त समाज में एक नई आशा, नई जागृति और नई प्रेरणा का संचार करना होगा। बहुविध और बहुआयामी राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक सक्रि-यताओं में प्रत्यक्ष शिरकत करते हुए युवाओं को स्वयं को सामाजिक परिवर्तन के प्रभावी उपकरण के रूप में विकसित करते हुए पूरे समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना के उन्नयन करने का जटिल और खतरों से भरा, लेकिन अपरिहार्य, गुरुतर दायित्व पूरा करने का बीड़ा उठाना होगा। **आह्वान** कैम्पस टाइम्स इस जरूरत के अहसास से निकलने वाली अपनी भूमिका को पूरी संजीदगी के साथ निभाने का निरन्तर प्रयास करता रहेगा और इस दिशा में छात्रों–युवाओं के प्रयासों का सहभागी बनेगा।

आह्वान कैम्पस टाइम्स विशेष रूप से देश की भ्रष्ट पूंजीवादी चुनावी राजनीति की नर्सरी बन चुकी वर्तमान पतित चुनावी छात्र राजनीति के एक क्रान्तिकारी विकल्प तैयार करने और क्रान्ति–कारी छात्र आन्दोलन एवं क्रान्तिकारी छात्र संगठनों को एकजुट करने की प्रक्रिया को त्वरान्वित करने वाले सभी गम्भीर एवं सार्थक प्रयासों की मदद करेगा।

आह्वान कैम्पस टाइम्स क्रान्तिकारी छात्र-युवा राजनीति के समर्पित और जुझारू कार्य–कर्ताओं के उन्नत चेतना सम्पन्न दस्ते तैयार करने और इस तरह क्रान्तिकारियों की एक नई पौध को विकसित करने के लिए आवश्यक राजनीतिक शिक्षण–प्रशिक्षण और स्वाध्याय का एक मंच मुहय्या कराएगा। शिक्षा व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र के विरुद्ध तथा रोजगार का मौलिक हक हासिल करने के लिए शिक्षा जगत के किसी भी हिस्से—छात्रों–शिक्षकों–कर्मचारियों के हर सही संघर्ष का सक्रिय सहयोग–समर्थन–मदद करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

अपने देश और दुनिया भर की शोषक सत्ताओं के विरुद्ध हर न्यायपूर्ण संघर्ष–आन्दोलन का समर्थन–सहयोग और मदद करना **आह्वान** कैम्पस टाइम्स अपना जरूरी दायित्व समझता है।

इस नए सामाजिक अभियान में हर नई प्रविष्टि और हर नई पहल का हम पूरी गर्मजोशी के साथ स्वागत करते हैं।

आपके सहयोग–समर्थन की अपेक्षा और क्रान्तिकारी अभिवादन सहित।

सम्पादक मण्डल

प्रधान संपादक
सुरेन्द्र प्रताप
संपादक
मुकुल श्रीवास्तव
संजय कुमार
प्रकाशक
आदेश सिंह
कार्यालय
द्वारा, नौजवान कार्यालय
कल्याणपुर, गोरखपुर-273001
मुद्रक
यू० पी० प्रिन्टर्स, कसया रोड
(रेलवे बायरलेस केन्द्र के पूरब)
पो० रेलवे कालोनी गोरखपुर।